

संपादकीय

प्राइवेट हाथों में शहर बसाने का सपना और जमीनी हकीकत

मध्यप्रदेश में क्या अब प्राइवेट बिल्डर भी अपनी स्मार्ट सिटी बना सकेगा? खबर सुनने में आधुनिक लगती है, लेकिन इसके भीतर छिपे सवालों को समझना जरूरी है। सरकार नई हाउसिंग पॉलिसी के तहत निवेशकों को इंसेंटिव और छूट देने जा रही है और इसका ड्राफ्ट तैयार है। सरकार का तर्क है कि निवेश बढ़ाने के साथ पर्यावरण अनुकूल कॉलोनियां विकसित करनी हैं। लेकिन जब शहर प्राइवेट हाथों में बसेंगे तो उनका चरित्र क्या होगा, यह बड़ा सवाल है।

सरकार ने दूसरे रज्यों की हाउसिंग पॉलिसी का अध्ययन किया है। महाराष्ट्र की 2025 की नीति में अफोर्डेबल हाउसिंग, पुनर्विक्रय, सरकारी भूमि, किराये के मकान और ग्रीन बिल्डिंग को शामिल किया गया है। प्रदेश में भी इसी तर्ज पर इंटीग्रेटेड टाउनशिप पॉलिसी लागू का जा रही है। इसमें पांच लाख से कम आबादी वाले शहरों में टाउनशिप के लिए न्यूनतम दस हेक्टेयर जमीन जरूरी है। लैंड पूलिंग और ग्रीन निर्माण पर एफएआर जैसे प्रावधान हैं।

नीति में वरिष्ठ नागरिकों, वर्किंग वुमन, विद्यार्थियों, माइग्रेंट वर्कर्स और औद्योगिक कर्मचारियों के लिए टारगेट हाउसिंग विकसित करने पर जोर है। सुनने में यह समावेशी मॉडल लगता है, लेकिन असल चुनौती इसके क्रियान्वयन की है।

क्या प्राइवेट स्मार्ट सिटी में गरीब और मध्यम वर्ग के लिए जगह बचेगी? अक्सर प्राइवेट टाउनशिप में अफोर्डेबल हाउसिंग कागजों में रह जाती है। सरकारी काम जमीन बेचना नहीं, बल्कि जमीन का न्यायपूर्ण आवंटन करना है। अगर सरकारी जमीन भी बाजार मूल्य पर ही देनी है तो आम आदमी को फायदा क्या हुआ? बेहतर होता कि सरकार निजी साझेदारों को सस्ती दर पर जमीन देकर कीमतों पर नियंत्रण रखती। केवल इंसेंटिव से शहर नहीं बसते, शहर बसते हैं नियंत्रण और जवाबदेही से।

सरकार निवेशकों को अतिरिक्त एफएआर, एसटीपी और नियमों में छूट दे रही है, लेकिन इसका बोझ शहर के इन्फ्रास्ट्रक्चर पर पड़ेगा। ज्यादा एफएआर का मतलब ज्यादा घनत्व, ट्रैफिक और संसाधनों की मांग है। प्राइवेट टाउनशिप सुविधाएं दे देगी, लेकिन बाहर के शहर पर दबाव बढ़ेगा। बिल्डर अधूरा काम छोड़ दे तो जिम्मेदारी किसकी होगी?

सरकार लैंड बैंक बनाकर बाजार मूल्य पर जमीन देने की बात कर रही है। सरकार का काम जमीन बेचना नहीं, बल्कि जमीन का न्यायपूर्ण आवंटन करना है। अगर सरकारी जमीन भी बाजार मूल्य पर ही देनी है तो आम आदमी को फायदा क्या हुआ? बेहतर होता कि सरकार निजी साझेदारों को सस्ती दर पर जमीन देकर कीमतों पर नियंत्रण रखती। केवल इंसेंटिव से शहर नहीं बसते, शहर बसते हैं नियंत्रण और जवाबदेही से।

मध्य प्रदेश को प्राइवेट स्मार्ट सिटी से ज्यादा समावेशी और टिकाऊ शहरों की जरूरत है। वर्किंग वुमन और विद्यार्थियों के लिए हास्टल जैसी सुविधाएं स्वागतयोग्य हैं, लेकिन किराया नियंत्रण और सुरक्षा मानकों का प्रावधान होना चाहिए। माइग्रेंट वर्कर्स के लिए टाउनशिप फैक्ट्री के पास हो और किराया इतना हो कि मजदूर चुका सके। यह नीति बड़ा अवसर है, लेकिन अगर इसे केवल निवेशकों को खुश करने का दस्तावेज बना दिया गया तो शहर प्राइवेट हाथों में बंट जाएंगे और आम आदमी घर के लिए भटकता रहेगा। सरकार को इंसेंटिव के साथ निगरानी और सामाजिक ऑडिट की व्यवस्था करनी चाहिए। तभी स्मार्ट सिटी का सपना आम आदमी के लिए भी जमीन पर उतरेगा।

आजकल

एनजीटी की दस दिन की डेडलाइन बदलेगी सरकारी सुस्ती का इतिहास

शाहपुरा तालाब के संरक्षण और अतिक्रमण हटाने के मामले में नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने एक बार फिर सख्त रुख अपनाते हुए एसडीएम, जल संसाधन विभाग और भोपाल नगर निगम को दस दिन में एनटीएल और 50 मीटर बचर जोन का सीमांकन करने तथा अधिसूचित वेदलैंड से अतिक्रमण हटाने के स्पष्ट निर्देश दिए हैं। सुनने में यह खबर नई जरूर लगती है, लेकिन असल में यह पिछले पांच वर्षों से चल रहे उसी नाटक का नया एपिसोड है, जिसमें एनजीटी फटकार लगाता है, सरकार हलफनामा देती है और जमीन पर तालाब और ज्यादा मरता जाता है। कागजों में झीलों का शहर, जमीन पर अतिक्रमण का शहर बनता जा रहा है।

भोपाल को झीलों का शहर कहा जाता है, लेकिन शाहपुरा जैसे तालाब गंदे पानी और पक्के निर्माण की चपेट में हैं। पर्यावरणविद नितिन सक्सेना की याचिका पर सुनवाई के दौरान सामने आया कि शाहपुरा तालाब अधिसूचित वेदलैंड होने के बावजूद उसके केचमेंट क्षेत्र में स्थायी और अस्थायी निर्माण हैं। बफर क्षेत्र में अतिक्रमण और गंदे पानी की समस्या बनी हुई है। 24 जुलाई के ड्रोन सर्वे ने भी अतिक्रमण की स्थिति स्पष्ट कर दी है। सवाल यह है कि सब कुछ सामने होने के बाद भी जिम्मेदार विभागों की आंखें क्यों नहीं खुलतीं?

पिछले वर्षों के पालन प्रतिवेदन सरकारी अमल की पोल खोलते हैं। हर बार वही जवाब मिलता है, सीमांकन किया जा रहा है, सर्वे हो रहा है, अतिक्रमण चिन्हित है और हटाने की प्रक्रिया जारी है। यह प्रक्रिया कभी खत्म नहीं होती, बल्कि इसी दौरान नया अतिक्रमण खड़ा हो जाता है। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि जिम्मेदारी भी एक विभाग से दूसरे विभाग तक फुटबॉल की तरह घूमती रहती है।

एनजीटी की दस दिन की समयसीमा इस बार परीक्षा है। केवल फोटो खिंचवाकर पालन प्रतिवेदन देना पर्याप्त नहीं होना चाहिए। ड्रोन सर्वे और सैटेलाइट इमेजरी सार्वजनिक होनी चाहिए, ताकि जनता भी देख सके कि तालाब कहाँ था और अब कहाँ रह गया है। भोपाल को बचाना है तो तालाब बचाने होंगे और तालाबों को बचाने के लिए आदेशों से ज्यादा जरूरी कठोर अमल, स्पष्ट जवाबदेही और दोषी अधिकारियों पर कार्रवाई है।

क्या आपके पास भी कोई ऐसी याद है, जिसे याद करते ही आज भी शर्मिंदगी से चेहरा लाल हो जाता है? कोई ऐसा पल, जिसे आप चाहें तो हमेशा के लिए अपने दिमाग से मिटा देना चाहते हैं? या फिर कोई बेहद खूबसूरत याद, जिसे उम्र भर संभालकर रखना चाहें? शायद दिमाग की भाषा और थैरेपी के जरिए बुरी याद के दर्दनाक असर को घटाय़ा जा सकता है, ज़रूरत उसका एक दिमाग में बना रहता है।

यादों को सहेजने के लिए ऐसे प्रयोग हो रहे हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो के वैज्ञानिकों ने अमिग्डाला की उन कोशिकाओं को खत्म कर दिया, जो खौफनाक यादों को संभालती थीं। वैज्ञानिक आर्टोजेनेटिक्स तकनीक से चूहों के हिप्पोकैम्पस यानी मस्तिष्क के अंदरूनी हिस्से में यादों वाली खास कोशिकाओं को लेजर लाइट से सक्रिय करने में सफल रहे हैं। इंसानों में बिना दिमाग खोले ऐसा मुमकिन हो सकता है, क्योंकि विज्ञान अब यादों को सिर्फ समझने की कोशिश नहीं कर रहा,

बल्कि उन्हें बदलने, दबाने और दोबारा सक्रिय करने की दिशा में भी आगे बढ़ चुका है।

अमेरिका की बोस्टन यूनिवर्सिटी के सेंटर फ़ॉर ब्रेन एंड मेमोरी के एसोसिएट प्रोफ़ेसर स्टीव रामिरेज की किताब

‘हाउ टू चेंज ए मेमोरी’ रॉयल सोसायटी त्रिवेदी साइंस बुक प्राइज के लिए भी शॉर्टलिस्ट हो चुकी है। चूहों पर किए गए प्रयोगों से यह साबित हो चुका है कि दिमाग में न्यूरोंस के स्तर पर बदलाव करके किसी याद को मिटाना, दोबारा जिंदा करना या नया रूप देना संभव है। रामिरेज बताते हैं कि मेमोरी दरअसल हमारे अनुभवों से दिमाग में होने वाला एक स्थायी बदलाव है। वैज्ञानिक इसे इंग्राम कहते हैं, यानी किसी खास याद से जुड़े मस्तिष्कीय बदलावों का पूरा नेटवर्क। जब भी हम किसी अनुभव से गुज़रते हैं तो वह हमारे दिमाग की कोशिकाओं में एक

कैश फ्लो का चमकता झूठ और निवेशकों की आंखों में धूल

सुनने में हैरानी हो सकती है, लेकिन आज निवेश की दुनिया में एक नया चलन शुरू हुआ है। कंपनी के मुनाफे से ज्यादा उसकी जेब में पड़ी नकदी को देखा जा रहा है और यही नकदी अब नया जाल बन गई है। ज्यादातर निवेशक कंपनी की नकदी यानी कैश पर भरोसा करने लगे हैं, लेकिन तगड़ा कैश कमजोर बिजनेस को भी मजबूत दिखा सकता है। यह पैमाना निवेशकों के लिए धोखा साबित हो सकता है। कैश फ्लो स्टेटमेंट यानी सीएफएस बताता है कि कंपनी में असल में कितना पैसा आया और गया। इसके तीन हिस्से हैं, रोज के कारोबार से आने वाली नकदी, संपत्ति और निवेश से जुड़ी नकदी तथा कर्ज और शेयर से जुटाई गई रकम और उसका खर्च। बिक्री से आने वाली रकम, इन्वेस्टिंग, फाइनेंसिंग और ऑपरेटिंग के खेल को समझे बिना निवेश करना अंधेरे में तीर चलाने जैसा है। सिर्फ तगड़ी नकदी देखकर निवेश करना सबसे जोखिम भरा फैसला हो सकता है।

भारत में कैश फ्लो स्टेटमेंट चमकाने के वे आम तरीके, जो ऑडिटरों की पकड़ में अमूमन आ जाते हैं, उन्हें समझना बहुत जरूरी है। भारत में कई कंपनियां सिर्फ तगड़ी नकदी के आधार पर निवेशकों को लुभाती हैं और यह निवेशक के लिए सबसे जोखिम भरा फैसला बन जाता है। कंपनी की असली ताकत उसके बिजनेस से आने वाले पैसे में होती है, न कि उधार लिए गए पैसे में या कागजों पर बढ़ाई गई कीमत में। अगर कोई कंपनी बार-बार यह दिखाती है कि उसके पास बहुत कैश है, लेकिन उसका बिजनेस वैसा नहीं है, तो समझ लीजिए कि कहीं न कहीं गड़बड़ी है। यही गड़बड़ी बाद में बड़े घोटाले का रूप ले लेती है।

ऑपरेटिंग कैश फ्लो को फुलाना सबसे आसान और आम तरीका है। इसके लिए कंपनियां कई तरह के हथकंडे अपनाती हैं। कभी कर्ज या अनुदान

रकम को गलत खाते में डाल दिया जाता है, कभी कागजी बढ़ोतरी को नकदी बता दिया जाता है तो कभी सप्लायर का भुगतान टालकर अपनी जेब में पैसा दिखाया जाता है। विशेषज्ञ कहते हैं कि कर्ज या अनुदान की रकम गलत खाते में डालने या सप्लायर का भुगतान टालने से ऑपरेटिंग कैश फ्लो यानी सीएफओ को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया जा सकता है। सरकारी ऑडिट में कई बार ऐसे मामले पकड़े गए हैं, लेकिन कई बार निवेशक इस चमक में आकर अपना पैसा गंवा देता है।

पांच मामलों ने कैश के इस खेल की पोल खोली है। पहला मामला इन्फो ड्राइव सॉफ्टवेयर का है। इस कंपनी ने कैश फ्लो स्टेटमेंट में 62 करोड़ का आउटफ्लो दिखाया, पर नकदी में गिरावट सिर्फ 16,700 रुपये की दिखी। एक निवेश 60 करोड़ दिखाया गया, लेकिन गणना में वह 24 करोड़ ही निकला। इस गड़बड़ी को बीओडी इंडिया की फॉरेंसिक ऑडिट ने पकड़ा और सेबी ने 2021 में कार्रवाई की। दूसरा मामला एनटीपीसी ग्रीन एनर्जी का है। यहां सोलर सबसे जोखिम भरा फैसला बन जाता है। 640 करोड़ रुपये का अनुदान फाइनेंसिंग में दिखाया गया, जबकि यह निवेश था। इसे कैग ने 2023-24 में पकड़ा। तीसरा मामला वीबी इंडस्ट्रीज का है। कर्ज देना ही बिजनेस था, फिर भी 2 करोड़ रुपये का ब्याज फाइनेंसिंग में दिखाया गया। कैश फ्लो दिखाए गए आंकड़ों से कम रहा। इसे सेबी ने 2016-18 में पकड़ा। चौथा मामला भारत इम्यूरोलॉजिकल एंड बायोलॉजिकल कॉर्पोरेशन का है। यहां अधूरे प्रॉपर्टी प्रोजेक्ट की कागजी कीमत बढ़ाई गई और 31.68 करोड़ रुपये ऑपरेटिंग कैश में जोड़े गए। इससे 19.90



करोड़ रुपये का आउटफ्लो और 11.82 करोड़ रुपये का इनफ्लो नजर आया। इसे वैधानिक ऑडिटर ने 2020-21 में पकड़ा।

पांचवां मामला आईईएफसीसीआई की सहायक कंपनी का है। यहां गलतियों से ऑपरेटिंग कैश फ्लो 9.75 करोड़ रुपये से ज्यादा दिखा, जो दर्ज ऑपरेटिंग इनफ्लो 12 करोड़ रुपये का करीब 82 प्रतिशत था। इसे कैग ने 2024 में पकड़ा।

इन मामलों में एक बात सामान्य है कि कैश गायब नहीं हुआ, बल्कि कहानी बदल दी गई। एनटीपीसी ग्रीन एनर्जी में अनुदान सही था, गलती सिर्फ मद की थी। सुधार के बाद फाइनेंसिंग इनफ्लो 7,671 करोड़ रुपये और इन्वेस्टिंग आउटफ्लो 9,207 करोड़ रुपये रह गया। इन्फो ड्राइव ने सेबी को जो स्टेटमेंट दिया, वह बीएसई पर मौजूद स्टेटमेंट से अलग था। यह दिखाता है कि कंपनियां दो तरह बढ़ाई गई और 31.68 करोड़ रुपये ऑपरेटिंग कैश में जोड़े गए। इससे 19.90

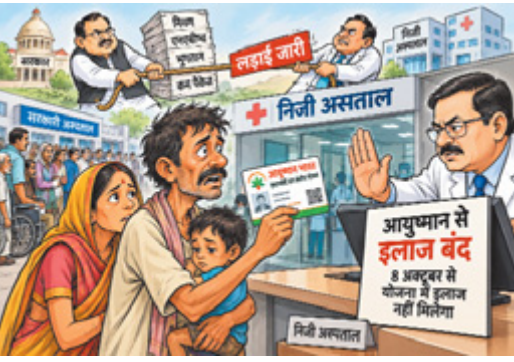
आयुष्मान कार्ड जेब में, इलाज फिर भी दूर

रामलाल के पास आयुष्मान कार्ड है। सरकार ने कहा था कि अब पांच लाख रुपये तक मुफ्त इलाज मिलेगा, लेकिन जब वह अपने बच्चे को लेकर भोपाल के निजी अस्पताल पहुंचा तो जवाब मिला कि आयुष्मान से इलाज बंद है। आठ अक्टूबर से योजना के तहत इलाज नहीं मिलेगा। रामलाल जैसी कहानी आज हजारों गरीबों की है, जिनकी जेब में कार्ड है, लेकिन अस्पताल के दरवाजे बंद हैं। मध्य प्रदेश में सरकार और निजी अस्पतालों के बीच लड़ाई चल रही है और इस लड़ाई में पिस रही है आम जनता।

सरकार ने आयुष्मान योजना में एनएबीएच मान्यता की शर्त अनिवार्य कर दी है। साथ ही कई सख्त नियम लगाए गए हैं और भुगतान की प्रक्रिया को कठिन बना दिया गया है। सरकार का कहना है कि इससे गुणवत्ता सुधरेगी और फर्जीवाड़ा रुकेगा, लेकिन निजी अस्पताल संचालकों का कहना है कि एनएबीएच की मान्यता लेना आसान नहीं है। इसके लिए लाखों रुपये का खर्च चाहिए, बड़ा भवन चाहिए और भारी स्टाफ चाहिए। छोटे शहरों और कस्बों के अस्पताल यह सब कहाँ से लाएंगे? भोपाल के निजी अस्पताल संघ के अध्यक्ष डॉ. विशाल सिंह बघेल ने साफ कहा है कि लंबे समय से भुगतान अटका हुआ है और नीतिगत विसंगतियों के कारण अस्पताल चलाना मुश्किल हो गया है।

निजी अस्पतालों की सबसे बड़ी पीड़ा लॉबत भुगतान है। अस्पताल मरीज का इलाज कर देता है, फाइल भेज देता है, लेकिन महीनों तक पैसा नहीं आता। कभी छोटी-सी गलती बताकर पूरा क्लेम रोक दिया जाता है तो कभी बार-बार आपत्ति लगाकर फाइल लौटा दी जाती है। अस्पताल को डॉक्टर को वेतन देना है, नर्स को वेतन देना है, दवा कंपनी को पैसा देना है और बिजली का बिल भी भरना है। अगर सरकार समय पर पैसा नहीं देगी तो अस्पताल कैसे चलेगा? इसका सीधा असर मरीज पर पड़ता है। अस्पताल कहता है कि पहले नकद जमा करो, फिर इलाज होगा और गरीब मरीज बिना इलाज के लौट जाता है।

सरकार ने कई बीमारियों के पैकेज की दरें बहुत कम कर दी हैं। निजी अस्पतालों का कहना



है कि उन दरों में इलाज करना संभव नहीं है। एक

ऑपरेशन में जांच, दवा, एनेस्थीसिया और डॉक्टर की फीस मिलाकर खर्च पैकेज से दोगुना हो जाता है। अगर अस्पताल को हर मरीज पर घाटा होगा तो वह आयुष्मान के मरीज को क्यों भर्ती करेगा? यही कारण है कि अस्पताल अब आयुष्मान के मरीजों को टालने लगे हैं। वे सीधे मना नहीं करते, बल्कि कहते हैं कि बेड नहीं है, डॉक्टर नहीं है या मशीन खराब है। लेकिन सच यह है कि उन्हें सस्ते पैकेज में इलाज करना मंजूर नहीं है और इसका खामियाजा जनता भुगत रही है। जब निजी अस्पताल आयुष्मान से इलाज करने से मना करते तो वे गरीब मरीज सरकारी अस्पताल की ओर भागता है, लेकिन वहां पहले से ही भीड़ है। एक-एक डॉक्टर के पास सैकड़ों मरीज हैं, जांच के लिए महीनों की प्रतीक्षा है और दवाओं की कमी है। ऐसे में गंभीर मरीज कहाँ जाएंगे? हृदय रोगी को तुरंत इलाज चाहिए, कैंसर के मरीज को समय पर कोमोथेरेपी चाहिए और दुर्घटना में घायल को तत्काल ऑपरेशन चाहिए। अगर समय पर इलाज नहीं मिला तो जान जा सकती है। आयुष्मान योजना इसी जान को बचाने के लिए बनी थी, लेकिन आज वही जान जोखिम में है, क्योंकि सरकार और निजी अस्पताल आमने-सामने हैं।

निजी अस्पताल संचालक अब अपनी बात दिल्ली तक ले जाने की तैयारी में हैं। वे केंद्र सरकार से मिलकर अपनी पीड़ा बताना चाहते हैं कि वास्तविक उपचार के बावजूद क्लेम रोकना उचित नहीं है और एनएबीएच जैसी शर्तें व्यवहारिक नहीं हैं। उन्होंने कहा है कि जब तक संतोषजनक समाधान नहीं होगा, तब तक आंदोलन जारी रहेगा और आयुष्मान के तहत

एकजुट होकर इलाज नहीं किया जाएगा। एक हजार एंजुलेस के साथ कुछ बड़े अस्पताल संचालकों ने अपनी जिम्मेदारी के साथ-साथ अपनी बात रखने का फैसला किया है। लेकिन यह लड़ाई चाहे दिल्ली तक जाए, इसका दर्द तो भोपाल और मध्य प्रदेश की जनता ही झेल रही है। आयुष्मान योजना केवल एक कार्ड नहीं है। यह गरीब का भरोसा है कि बीमारी में सरकार उसके साथ है। जब अस्पताल में कहा जाता है कि आयुष्मान नहीं चलेगा तो वह भरोसा टूट जाता है। गरीब सोचता है कि योजना केवल टीवी और पोस्टर में है, जमीन पर कुछ नहीं।

कई मरीज तो शर्म के मारे दोबारा अस्पताल ही नहीं जाते और घर पर ही दर्द सहते रहते हैं। कई लोग कर्ज लेकर इलाज कराते हैं और फिर कर्ज के जाल में फंस जाते हैं। सरकार और निजी अस्पतालों की इस लड़ाई में गरीब को खाली से रोटी भी छिन रही है और जेब से पैसा भी। जनता पूछ रही है, समाधान कहाँ है? जनता का सवाल सीधा है कि जब सरकार ने योजना शुरू की थी तो निजी अस्पतालों को विश्वास में क्यों नहीं लिया गया? और अगर अस्पताल फर्जीवाड़ा कर रहे थे तो उन पर कार्रवाई क्यों नहीं की गई? पूरे सिस्टम को बंद करना समाधान नहीं है। सरकार को चाहिए कि वह एनएबीएच की शर्त को चरणबद्ध तरीके से लागू करे, छोटे अस्पतालों को मदद दे, भुगतान की प्रक्रिया को तेज और पारदर्शी बनाए और पैकेज दरों को व्यवहारिक बनाए, ताकि अस्पताल को घाटा न हो। निजी अस्पतालों को भी चाहिए कि वे मरीज को बंधक न बनाएं, फर्जीवाड़ा करने वालों का साथ न दें और ईमानदारी से योजना को चलाएं। स्वास्थ्य सेवा कोई व्यापार नहीं है, यह जीवन बचाने का मिशन है। इस मिशन में सरकार और निजी अस्पताल दोनों को साथ चलना होगा। अगर दोनों लड़ेंगे तो मेरगा तो आम आदमी ही।

आयुष्मान योजना को कागजों से निकालकर जमीन पर लाना होगा, भुगतान समय पर करना होगा और अस्पतालों की समस्याओं को सुनना होगा। तभी रामलाल जैसे हजारों लोगों के हाथ में जो कार्ड है, वह सच में वरदान बनेगा। वरना वह कार्ड केवल जेब में पड़ा एक कागज बनकर रह जाएगा और जनता की परेशानी बढ़ती ही जाएगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

आबादी के बीच धड़ल्ले से बिक रहे पटाखे, दुर्घटनाओं को आमंत्रण

के हलालपुर और लालघाटी की सड़क पर दोनों तरफ दुकानें हैं और उनमें रंग-बिरंगे डिब्बों में पटाखे सजे हैं। ठीक बगल में पेट्रोल पंप है, सामने से स्कूल बसें निकल रही हैं, 100 मीटर पर अस्पताल है। यह तस्वीर सिर्फ हलालपुर की नहीं है। इंदौर के सुभाष चौक, ग्वालिपर के लश्कर, जबलपुर के सदर और उज्जैन के फ्रीजंग में भी यही हाल है। मध्यप्रदेश के अधिकांश शहरों में रियायशी इलाकों में सरेआम पटाखे बेचे जा रहे हैं। जमीन पर धंधा धड़ल्ले से चल रहा है। एक चिंगारी पूरा मोहल्ला खाक कर सकती है।

पटाखा कोई किराने का सामान नहीं है। इसमें बारूद है। आग पकड़ने के लिए माचिस की जरूरत भी नहीं, घघण और गर्मी काफी है। लोहे के शटर की गर्मी, दोपहिया वाहन की चिंगारी या अधजली बीड़ी भी बड़ा हादसा कर सकती है। हलालपुर में 15 दुकानों में से एक में आग लगती है तो क्या होगा? पेट्रोल पंप तक आग पहुंच सकती है, स्कूल में भगदड़ मच सकती है और अस्पताल तक धुआं भर सकता है। सोनी पटाखा सेंटर में लगी आग ने चेतवानी दी थी, लेकिन हमने उस चेतावनी को भी फाइल में दबा दिया।

प्रशासन की मजबूरी भी समझिए। एनओसी रह करने के बाद मामला पीईएसओ और हाईकोर्ट में उलझ जाता है। नोटिस, सुनवाई, जवाब और फिर आर्ही तोरीख। इस कानूनी जाल में सुरक्षा सबसे पीछे छूट जाती है। कारोबारी कहते हैं, हमारा रोजगार है, हम कहाँ जाएं? लेकिन क्या रोजगार का अधिकार किसी दूसरे के जीने के अधिकार से बड़ा हो सकता है? व्यापार की स्वतंत्रता किसी की जान के लिए खतरा नहीं बननी चाहिए।

रियायशी इलाके में पटाखा बेचना ठीक वैसे ही है जैसे रसींधर में पेट्रोल का स्टॉक रखना। इसका हल सीलिंग नहीं, शिफ्टिंग है। आबादी से बाहर खुली जगहों पर स्थायी पटाखा कॉम्प्लेक्स बनाया जाए, जहाँ फायर टैंडर पहुंच सके और आसपास पर्याप्त खुली जगह हो। दीपावली के दौरान अस्थायी लाइसेंस खुले मैदान में, स्कूल, अस्पताल और पेट्रोल पंप से सुरक्षित दूरी के साथ दिए जाएं। विस्फोटक नियम, 2008 के अनुसार पटाखा दुकान से 50 मीटर के भीतर स्कूल, अस्पताल या पेट्रोल पंप नहीं होना चाहिए। इसका पालन कागज पर नहीं, जीपीएस मैपिंग से होना चाहिए।

त्योहार खुशी का है, मातम का नहीं। पटाखे त्योहार की खुशी हैं, लेकिन आबादी के बीच बिकने पर वही खुशी एक टाइम बम बन सकती है। प्रशासन नोटिस से आगे बढ़कर स्पष्ट और प्रभावी शिफ्टिंग प्लान लागू, कारोबारी सुरक्षित जगह पर जाने को तैयार हों और नगरिक भी यह समझें कि पास में मिलने वाले पटाखों की कीमत पूरे मोहल्ले की सुरक्षा से नहीं चुकाई जानी चाहिए। और भविष्य में हादसों की आशंका घटे, यही सबसे सुरक्षित और व्यवहारिक रास्ता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

न्यूरोसाइंस में असंभव खोज, अब मित सकेंगी कड़वी यादें...

रहस्य को समझने में मदद करेगी। हो सकता है भविष्य में हम अपनी यादों को कंप्यूटर की फाइलों की तरह सहेज सकें, अच्छी यादों को बार-बार देख सकें और बुरी यादों को डिलीट कर सकें। यह सुनने में किसी फिल्म जैसा लगता है, लेकिन विज्ञान इसे हकीकत बनाने की दिशा में तेजी से बढ़ रहा है। यादें ही हमें इंसान बनाती हैं। अच्छी यादें हमें खुशी देती हैं और बुरी यादें हमें सबक देती हैं। अगर विज्ञान कड़वी यादों के दर्द को कम करने में मदद करता है तो यह एक बड़ी उपलब्धि होगी, लेकिन यह हमें याद रखना होगा कि यादों को मिटाने की ताकत के साथ उन्हें सहेजने की जिम्मेदारी भी आती है। भविष्य में जब यह तकनीक इंसानों पर लागू होगी तो समाज को तय करना होगा कि इसका उपयोग कहाँ तक सही है और कहाँ तक गलत। फिलहाल तो यह खोज यही बताती है कि दिमाग में कुछ भी स्थायी नहीं है, हर याद को बदला जा सकता है और हर जख्म को भरा जा सकता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)